

रचनावादी शिक्षाशास्त्र

वर्जीनिया रिचर्ड्सन
अनुवाद : योगेन्द्र दत्त

यह लेख रचनावादी (कंस्ट्रक्टिविस्ट) शिक्षाशास्त्र के भीरत से इसकी एक समालोचना है। पहले इसमें रचनावादी शिक्षाशास्त्र का एक संक्षिप्त इतिहास दिया गया है और फिर रचनावादी अधिगम सिद्धांत के साथ उसके संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। इसके बाद शोध और व्यवहार के धरातल पर रचनावादी शिक्षाशास्त्र को किस तरह देखा जाता है, इससे संबंधित चार मुद्दों पर चर्चा की गई है। पहला मुद्दा कक्षा में विद्यार्थियों के अधिगम संबंधी शोध पर फोकस के बारे में एक सुझाव के रूप में है। दूसरा पहलू सैद्धांतिक विकास के विषय में है ताकि हमें पता चले कि ज्यादा या कम प्रभावी रचनावादी अध्यापन क्या होता है। तीसरा पहलू रचनावादी शिक्षाशास्त्र अपनाने वाले अध्यापकों के पास अपने विषय के गहरे ज्ञान की आवश्यकता पर जोर देता है। साथ ही इस शर्त की वजह से एलिमेंट्री टीचर्स के लिए जो समस्याएं पैदा होती हैं उन पर चर्चा की गई है क्योंकि प्रारंभिक कक्षाओं के अध्यापकों को बहुत सारे विषय पढ़ाने होते हैं। चौथा पहलू इस के बारे में है कि फिलहाल रचनावादी शिक्षाशास्त्र को जिस तरह पेश किया जा रहा है उसमें बहुत गहरे वैचारिक आग्रह दिखाई देते हैं और फलस्वरूप ऐसे लोगों पर इस शिक्षाशास्त्र का एक प्रचलित संस्करण थोपने का खतरा पैदा हो रहा है जो ज्यादा अलग ढंग से काम करना चाहते हैं।

एक अधिगम सिद्धांत के रूप में रचनावाद का इतिहास दशकों पुराना है (देखें फिलिप्स, 2000)। मगर, एक अध्यापन सिद्धांत या व्यवहार के रूप में रचनावादी अध्यापन को सिर्फ एक दशक से अपनाया जा रहा है। रचनावादी अध्यापन में मौजूदा दिलचस्पी और लेखन के बावजूद अभी भी बहुत सारे मुद्दे अधूरे छूटे हुए हैं। ये मुद्दे आंशिक रूप से इस वजह से भी छूट गए हैं क्योंकि अधिगम के किसी सिद्धांत को अध्यापन के सिद्धांत या व्यवहार में रूपांतरित करना आसान नहीं होता। यह रूपांतरण हमेशा ही कठिन रहा है और इसके नतीजे कभी भी संतोषजनक नहीं रहे। एकल या सामूहिक अर्थ निर्माण प्रक्रिया के रूप में रचनावाद का स्वरूप इस रूपांतरण को और भी ज्यादा कठोर बना देता है। फिर भी, रचनावादी शिक्षाशास्त्र के कई ऐसे आयाम हैं जो तुलनात्मक रूप से ज्यादा व्यवहार-केंद्रित हैं, जैसे, अध्यापक के ज्ञान से संबंधित हमारी अपेक्षाओं से कई ऐसे मुद्दे पैदा होते हैं जिन पर अभी तक या तो पूरा ध्यान नहीं दिया गया है या वे पूरी तरह हल नहीं हो पाए हैं। इस लेख में रचनावादी अध्यापन और शिक्षक शिक्षा के संक्षिप्त इतिहास का ब्यौरा दिया गया है और उनमें से कुछ मुद्दों का विश्लेषण भी किया गया है।

रचनावादी सिद्धांत

रचनावाद को अधिगम या अर्थ निर्माण का एक ऐसा सिद्धांत माना जाता है जिसके अनुसार व्यक्ति पहले से ज्ञात और स्वीकृत ज्ञान व अनुभवों में नए विचारों व ज्ञान को जोड़कर अपनी एक नई समझदारी विकसित करते हैं (रेज़निक, 1989)। मगर, थॉम्पसन (2000) का कहना है कि रचनावाद अधिगम का सिद्धांत नहीं

है बल्कि यह जानने का सिद्धांत है और रचनावाद को अधिगम का एक सिद्धांत विकसित करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। फिर भी, रचनावादी शिक्षाशास्त्र के विकास की ज्यादातर चेष्टाओं में इसे एक अधिगम सिद्धांत के रूप में देखने की प्रवृत्ति ही ज्यादा मुखर दिखाई देती है।

हाल ही में फिलिप्स (2000) ने 'कन्स्ट्रक्टिविज्म इन एजुकेशन' के नाम से एक 'एनएसएसई ईयरबुक' का संपादन किया है, जिसमें कई ऐसे अध्याय हैं जिनमें पाठक को उस दार्शनिक एवं सामाजिक सैद्धांतिक साहित्य से परिचित कराया गया है जो अपने दौर में रचनावाद नहीं कहलाता था मगर जिसमें निश्चित रूप से मौजूदा रचनावादी अधिगम सिद्धांत के आधारभूत तत्वों पर एक व्यापक सहमति जरूर थी। अध्याय लेखकों ने इस निर्मिति की आधारशिलाओं की शिनाख्त और व्याख्या की है। वे रचनावाद को एक ऐसी निर्मिति और आंदोलन के रूप में पेश करते हैं जो बेहिसाब जटिल हो चुका है, जिसमें अलग-अलग संस्थापक और पैरोकार हैं, अलग-अलग धाराएं, केंद्र और अनुशासनात्मक पद्धतियां मौजूद हैं। उदाहरण के लिए, मैथ्यूज 2000 ने शैक्षिक रचनावाद के अलग-अलग रूप गिनाए हैं जिनका संबंधित साहित्य में उल्लेख और विवरण मिलता है। इनमें पद्धतिगत (मैथडोलॉजिकल), रेडिकल उपदेशवादी (डाइडैक्टिक) और द्वंदात्मक (डाइलेक्टिकल) आदि संस्करण भी शामिल हैं। ईयरबुक से ऐसा संकेत मिलता है कि रचनावादी सिद्धांत से संबंधित साहित्य में बहुत सारे प्रश्न अनुत्तरित बचे हुए हैं। मसलन, ज्ञान से संबंधित प्रश्न और वह कैसे बनता है, सामाजिक किसे कहें, हमारे रचनावादी व्यवहार पर विषयवस्तु से क्या फर्क पड़ता है, वगैरह।

बहरहाल, रचनावाद के स्वरूपों के दो भेदों पर थोड़ी सहमति दिखाई देती है। फिलिप्स (2000) ने इन दोनों प्रकारों को बुनियादी तौर पर अलग-अलग ध्रुव बताया है जो रचनावाद के पूरे दायरे को पेश करते हैं। फिर भी इस पर आम सहमति नहीं है और हम बिलकुल अलग-अलग व परस्पर प्रतिस्पर्धी पद्धतियों से जूझ रहे हैं। ये दोनों किस्में कक्षा के सामाजिक आयामों पर जोर देते हुए एक-दूसरे के निकट आती जा रही हैं।¹ मगर, दोनों में रचनावाद को देखने की दृष्टि अलग-अलग है- पहली पद्धति में समाजशास्त्रीय दृष्टि अपनाई जाती है तो दूसरी पद्धति में मनोवैज्ञानिक दृष्टि अपनाई जाती है। फिलिप्स इन्हीं दृष्टियों के भेद पर जोर देते हैं:

1. *सामाजिक कंस्ट्रक्शनिज्म या सामाजिक रचनावाद*। इस आशय का सिद्धांत कि ज्ञान या अनुशासन का जो भंडार विकसित किया गया है वह मानव निर्मितियां हैं और उन क्षेत्रों में ज्ञान ने जो स्वरूप लिया है वह "राजनीति, विचारधारा, मूल्य-मान्यता, सत्ता के प्रयोग और हैसियत के संरक्षण, धार्मिक विश्वासों और आर्थिक स्वहित जैसी चीजों से निर्धारित होता है" (फिलिप्स, 2000 पृष्ठ 6)। यह समझ इस बात पर केंद्रित है कि लोग अपने जगत के बारे में जिन तरीकों से खास समझ और औपचारिक ज्ञान विकसित करते हैं उन्हें सत्ता, अर्थशास्त्र, राजनीति और सामाजिक पहलू प्रभावित करते हैं। ज्ञान के इन समुच्चयों को बाहरी जगत का वस्तुनिष्ठ निरूपण नहीं माना जाता है।
2. *मनोवैज्ञानिक रचनावाद*। यह पद्धति एक विकासात्मक अथवा अधिगम सिद्धांत से संबंधित है जो इंगित करती है कि सीखने वाले खुद किसी परिघटना के बारे में वास्तव में अर्थनिर्माण में सक्रिय होते हैं और ये कंस्ट्रक्शन/अर्थ निर्माण आंशिक रूप से सीखने वाले के पिछले ज्ञान के आधार पर खास किस्म के होते हैं। अर्थ निर्माण की प्रक्रिया एक ऐसे सामाजिक समूह में संपन्न होती है जो अपने सदस्यों को उन अर्थों को साझा करने की आवश्यकता और अवसर प्रदान करता है। अगर समूह के भीतर मौजूद व्यक्ति किसी परिघटना या दूसरी परिघटनाओं के साथ उसके संबंधों के स्वरूप और आवश्यकता के बारे में एक सहमति पर पहुंच जाते हैं तो वे अर्थ औपचारिक ज्ञान की श्रेणी में पहुंच जाते हैं।

सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का मूल फर्क फोकस पर है। दोनों ही पद्धतियों में मान्यता यह है कि अर्थ अथवा ज्ञान की निर्मिती मानव मस्तिष्क में सक्रिय रूप से होती है। मगर, सामाजिक रचनावाद इस पर जोर देता है कि उस औपचारिक ज्ञान का विकास सत्ता, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक शक्तियों के प्रभाव से किस तरह हुआ है या किस तरह निर्धारित हुआ है। इसमें ज्ञान की संरचना और वह ज्ञानशास्त्रीय रूपरेखा भी निहित है जिससे वह ज्ञान

पैदा हो रहा है। दूसरी तरफ, मनोवैज्ञानिक पद्धति इस पर ध्यान देती है कि हमारे मस्तिष्क में अर्थ किन-किन तरीकों से उत्पन्न होता है। इसी पद्धति के तहत हाल ही में यह भी देखा जाने लगा है कि सामूहिक प्रक्रियाओं में साझा अर्थ किस तरह विकसित होते हैं।

मनोवैज्ञानिक रचनावाद के भीतर सामाजिक फोकस का विकास एक महत्वपूर्ण योगदान है, वह भी खास तौर पर शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रियाओं के लिए। इसमें एक विशेषज्ञ समुदाय के भीतर विकसित हुए औपचारिक ज्ञान के सामाजिक स्वरूप को मान्यता मिलती है। यह धारा उस ज्ञान सृजन को भी मान्यता देती है जो कक्षा जैसे किसी सामाजिक समूह में संपन्न होता है। मगर, हमें इस बात को भी समझना चाहिए कि मनोवैज्ञानिक रचनावाद का सामाजिक पहलू अपने फोकस, अवधारणा या विश्लेषण के धरातल पर सामाजिक रचनावाद के समतुल्य नहीं है। मनोवैज्ञानिक रचनावाद के सामाजिक आयाम उन व्यक्तिगत योगदानों पर जोर देते हैं जिन पर फिर समूह में खींचतान होती है। यह एक संवादिक और तर्कशील प्रक्रिया होती है जो समझ के एक साझा और विश्वसनीय समुच्चय की रचना करती है। इस प्रक्रिया में भाषा और संस्कृति एक अहम भूमिका अदा करते हैं मगर आलोचनात्मक सिद्धांत से जुड़े हैसियत, विचारधारा, राजनीति और सत्ता जैसे मुद्दों पर इस मनोवैज्ञानिक पद्धति में आमतौर पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता है जितना सामाजिक रचनावाद में दिया जाता है।

रचनावादी शिक्षाशास्त्र का ज्यादातर काम इस दूसरी पद्धति- मनोवैज्ञानिक रचनावाद- के दायरे में ही चलता रहा है। हालांकि इसके कुछ अपवाद भी हैं मगर वे बहुत कम हैं।³

रचनावादी शिक्षाशास्त्र में वर्तमान दिलचस्पी

रचनावादी ढंग से पढ़ाने का क्या मतलब होता है, इसमें मौजूदा दिलचस्पी पठन/भाषा कला क्षेत्र में एटवेल (1987) और फॉसनाट (1989) जैसे लेखकों के विश्लेषण से पैदा हुई है। इसके लिए जरूरी था कि हम विद्यार्थी कैसे सीखते हैं, इस पर गौर करने की बजाय इस पर ध्यान दें कि कक्षा में अलग-अलग विद्यार्थियों और विद्यार्थियों के समूहों में अधिगम को सुगम बनाने के लिए क्या-क्या किया जाता है। इसी बिंदु पर विभिन्न विषयों में रचनावादी सिद्धांत आधारित अधिगम मानक तय करने के लिए कई कार्यक्रम शुरू किए गए (जैसे नैशनल काउंसिल ऑफ टीचर्स आफ मैथमेटिक्स, 1989)। इस तरह के कार्यक्रमों के आलोक में आमतौर पर इन मानकों के अनुसार पढ़ाने की संभावित पद्धतियां सुझाने वाली सामग्री तैयार की गई (जैसे नैशनल काउंसिल ऑफ टीचर्स आफ मैथमेटिक्स 1991)।

नब्बे के दशक में रचनावादी शिक्षाशास्त्र के मनोवैज्ञानिक शोध से कक्षाओं में अध्यापकों के क्रियाकलाप के ऐसे विस्तृत पहलू सामने आने लगे जिनको शोधकर्ता रचनावादी मान रहे थे। इनमें से ज्यादातर शोध निश्चित विषयवस्तु के क्षेत्र में ही किया गया था। उदाहरण के लिए, गणित की कक्षाओं में कॉब एवं अन्य (1991) तथा वुड, नेलसन एवं वॉरफील्ड (2001) ने शोध किया। फ्रीडमैन (1994) ने लेखन अध्यापन; वाइनवर्ग और विल्सन ने इतिहास (1993), विल्सन द्वारा इसका सारांश (2001) प्रस्तुत किया गया; बार (2001) द्वारा पठन का सारांश किया गया और टॉबिन (1993) द्वारा विज्ञान अध्यापन का अध्ययन किया गया व व्हाइट्टा द्वारा इसका सारांश किया गया। इनमें से बहुत सारे लेखकों ने दोनों अध्यापन पद्धतियों में फर्क को दिखाने के लिए संचरण/ट्रांसमिशन मॉडल के अध्यापकों के साथ रचनावादी की तुलना भी की।

इनमें तथा इस प्रक्रिया के दूसरे निरूपणों में प्रस्तुत किए गए रचनावादी शिक्षाशास्त्र में निम्नलिखित विशिष्टताएं दिखाई पड़ती हैं:

1. विद्यार्थी और उसकी पृष्ठभूमि का सम्मान किया जाता है तथा संबंधित क्षेत्र के तत्वों के बारे में व उन तत्वों से संबंधित मान्यताओं या विश्वासों के बारे में समझ विकसित की जाती है (इसे विद्यार्थी-केंद्रित पद्धति भी कहा जा सकता है);
2. सामूहिक संवाद चलाया जाता है जिसमें किसी क्षेत्र के तथ्यों की इस उद्देश्य से पड़ताल की जाती है कि संबंधित शीर्षक पर एक साझा समझ विकसित हो;

3. बातचीत या चर्चा में प्रत्यक्ष निर्देशों, पाठ के उल्लेख, वेबसाइट पर खोजबीन या अन्य माध्यमों के जरिए संबंधित विषय के औपचारिक ज्ञान का नियोजित या अनियोजित ढंग से परिचय दिया जाता है।
4. विद्यार्थियों को इस उद्देश्य के लिए तय किए गए टास्क्स में सक्रियता के जरिए मौजूदा मान्यताओं व समझ को निर्धारित करने, चुनौती देने, बदलने या उसमें नये आयाम जोड़ने के अवसर मुहैया कराना;
5. विद्यार्थियों में अपनी समझ और अधिगम प्रक्रिया को लेकर एक चेतना विकसित करना।

मगर, रचनावादी शिक्षाशास्त्र के ये तत्व विशिष्ट व्यवहार की श्रेणी में नहीं आते। आप चाहें तो उन्हें अध्यापन की ऐसी पद्धति कह सकते हैं जो किसी अध्यापक के व्यवहार और सिद्धांत का बुनियादी पहलू बन जाती है। ये तत्व किसी शीर्षक के दायरे, बच्चों के आयु वर्गों, कक्षा में दाखिले से पहले बच्चों के अनुभवों, स्कूल के संदर्भ, अध्यापन शैली आदि के आधार पर बहुत अलग-अलग ढंग से सामने आते हैं। लिहाजा, इस लेख में रचनावादी शिक्षाशास्त्र को कक्षा के भीतर एक ऐसे वातावरण, गतिविधियों और पद्धतियों की रचना के रूप में देखा जा रहा है जो सीखने के रचनावादी सिद्धांत पर आधारित हैं और जिनका उद्देश्य ये होता है कि विद्यार्थी मस्तिष्क की आदतों व रुचि के माध्यम से उस विषय की गहरी समझ विकसित करें जिससे भावी अधिगम में भी सहायता मिलेगी। अभी तक इस तरह की कक्षा की रचना करने में वे पांच तत्व महत्वपूर्ण दिखाई देते हैं जिनका पीछे जिक्र किया गया था।

जैसे-जैसे रचनावादी मानकों पर आधारित अध्यापन में दिलचस्पी पैदा हुई है, शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में भी रचनावादी शिक्षक शिक्षा के अर्थ व व्यवहार को लेकर पड़तालें शुरू हो गई हैं। फ्रांसीन पीटरमैन ने रचनावादी शिक्षक शिक्षा पर अमेरिकन एज्यूकेशन रिसर्च एसोसिएशन ('एईआरए') में लगातार तीन साल तक सिम्पोज़ियम आयोजित किए (देखें पीटरमैन, 1991, 1992; पीटरमैन एवं कैमियो, 1993) जहां इस पद्धति से संबंधित शोध, मुद्दों, नीतियों और व्यवहारों पर विचार किया गया। शोधकर्ताओं के बीच इसको लेकर काफी विवाद खड़े हुए कि अध्यापकों को रचनावादी ढंग से पढ़ाना सिखाने का क्या मतलब होता है। शुरुआत में मुख्य रूप से अध्यापकों को कक्षा में एक रचनावादी ढंग से पढ़ाने की शिक्षा देने पर जोर दिया गया था। फलस्वरूप रचनावादी अधिगम सिद्धांत पाठ्यचर्या का एक महत्वपूर्ण तत्व बन गया और विद्यार्थियों को प्रायः लेक्चर के रूप में पढ़ाया जाने लगा। प्रशिक्षु शिक्षक रचनावादी कक्षा तैयार कर सकें, इसके लिए उन्हें रचनावादी अध्यापन के मॉडल भी मुहैया कराए गए।

उस वक्त प्रशिक्षु शिक्षकों को रचनावादी अध्यापन के मॉडल पढ़ाने को लेकर विवाद उठा हुआ था। रचनावाद पढ़ाने की जो पद्धतियां अपनाई गई थीं वे उन मॉडलों में निहित अधिगम रूपरेखा के विपरीत थीं जो अध्यापकों को अपनाने के लिए कहा जा रहा था। जल्दी यह बात साफ हो गई कि ये शिक्षक शिक्षा कक्षाएं भी रचनावादी पद्धति से ही चलाई जानी चाहिए ताकि प्रशिक्षु शिक्षकों में इस सिद्धांत की वैधता को ताकत मिले और उन्हें अध्यापन प्रक्रिया की गहरी समझ और ऐसी आदतें विकसित करने का मौका मिले जो उन्हें भी लगातार सीखते जाने में मदद देंगी।

इस तरह शिक्षक शिक्षा संस्थानों की कक्षाएं लेक्चर फॉर्मेट की जगह एक ऐसी पद्धति की तरफ बढ़ने लगीं जिसमें प्रशिक्षु शिक्षक वर्तमान में एक सूत्रधार की भूमिका निभाता हो। रचनावादी शिक्षक शिक्षा के एक-दूसरे से जुड़े हुए पहलू ये थे: (1) विद्यार्थियों को अपनी कक्षाओं में रचनावादी ढंग से पढ़ाने की ओर ले जाना, तथा (2) शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों में रचनावादी पद्धति अपनाना। ऊपर रचनावादी शिक्षाशास्त्र के जो पांच तत्व गिनाए गए हैं वे रचनावादी शिक्षक शिक्षा की भी विशेषताएं रही हैं (रिचर्ड्सन, 1997)।

अनसुलझे मुद्दे

जब हम रचनावादी अध्यापन और शिक्षक शिक्षा तथा इन शीर्षकों पर शोध के बारे में विचार करते हैं तो हमारे लिए कौन से सवाल महत्वपूर्ण होते हैं? अगर हमें रचनावादी शिक्षाशास्त्र की अपनी समझ को आगे बढ़ाना है तो हमें कई मुद्दों पर संजीदगी से विचार करना होगा।

विद्यार्थी अधिगम

रचनावादी शिक्षाशास्त्र की सारी चिंताओं, दुविधाओं और समालोचनों में यह अहसास हमेशा हावी रहता है कि एक अधिगम सिद्धांत, विकास तथा अर्थ निर्माण सिद्धांत के रूप में रचनावाद इसी बात पर जोर देता है कि बच्चे लेक्चर या प्रत्यक्ष निर्देश या टेलीविजन जैसे नॉन-इंटरैक्टिव माध्यमों से जो कुछ सीखते हैं उससे वे कुछ अर्थ गढ़ते रहें। और जैसा कि पहले भी जिक्र किया गया है, प्रत्यक्ष शिक्षा और लेक्चर भी रचनावादी कक्षा का हिस्सा हो सकते हैं। तो फिर रचनावादी अध्यापन बच्चों के लिए ऐसा क्या करता है जो एक परंपरागत संचरण/ट्रांसमिशन मॉडल पर आधारित कक्षा या शिक्षा से भिन्न होता है? मैंने हमेशा ये सोचा है कि एक रचनावादी कक्षा बच्चों का चीजों की एक गहरी समझ विकसित करने, उसको आत्मसात करने, ज्ञान विकास के स्वरूप को समझने और ज्ञान व समझ को एक-दूसरे से जोड़ने वाला जटिल संज्ञानात्मक मानचित्र या नक्शा विकसित करने के अवसर प्रदान करती है। परन्तु ऐसा हो रहा है यह मान लेने के लिए और एक रचनावादी कक्षा में बच्चों के अधिगम के बारे में और ज्यादा जानने के लिए हमें इस शीर्षक पर थोड़ा और आनुभविक शोध करना होगा।

ज्यादातर रचनावादी शिक्षाशास्त्र एक निश्चित दायरे या अनुशासन पर इस उद्देश्य से जोर देता है कि बच्चों में गणितीय, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, संगीतीय आदि ढंग से सोचने की क्षमता विकसित हो। लिहाजा बच्चों के सीखे हुए (लर्निंग) की पड़ताल करने वाला आनुभविक शोध संभवतः एक खास अनुशासनात्मक या विषय दायरे में ही अच्छी तरह से किया जा सकता है। इस तरह के अन्वेषण का एक खास उदाहरण एनएसएसई में ईयरबुक में बॉल एवं बास(2000) द्वारा लिखे गए अध्याय में दिखाई पड़ता है। इसमें ये लेखक दो प्रस्थान बिन्दुओं के साथ काम कर रहे हैं : इनमें से एक प्रस्थान बिन्दु गणित के दायरे से आया है- गणितीय ज्ञान तर्कणा और पुष्टि के माध्यम से किस तरह अस्तित्व में आता है या लेखकों के मुताबिक, “यह साबित करने की चुनौती कि कोई चीज सही है या नहीं जबकि ऐसी सारी घटनाओं की जांच करना संभव नहीं है।” (पृष्ठ 197)। अध्यापन प्रस्थान बिन्दु में तीन प्रतिबद्धताएं शामिल हैं : गणित के अनुशासन को ईमानदारी से देखना; बच्चों के गणितीय विचारों को पूरा सम्मान देना और गणित को समुदाय के स्तर पर स्थित एक सामूहिक बौद्धिक उद्यम के रूप में देखना। इन दोनों प्रस्थान बिन्दुओं को एक साथ लाने पर लेखक यह स्पष्ट कर सकते हैं कि रचनावादी कक्षा में गणितीय तर्कणा का विकास किस तरह होता है। यह गणितीय तर्कणा और गणितीय पुष्टि के कौशलों का बहुत बेबाक और बेहतर उपयोगी ब्यौरा है जो रचनावादी पद्धति पर आधारित कक्षाओं में बच्चों को मिलता है। इस तरह के और लेखन से रचनावादी अवधारणा को तराशने और व्यवहार के लिए उपयोगी जानकारियां मुहैया कराने में मदद मिलेगी।

यहां इस बात को नोट करना जरूरी है कि अध्यापन और विद्यार्थियों के अधिगम के संबंध पर आनुभविक फोकस के लिए ऐसे प्रयोगिक अध्ययन की आवश्यकता नहीं है जिसमें रचनावादी और परंपरागत शिक्षा पद्धतियों की तुलना की जाए। इस तरह की प्रायोगिक रूपरेखा नीतिगत उद्देश्यों के लिए मददगार हो सकती है मगर शिक्षा के परिणामों पर कोई सहमति विकसित करना मुश्किल होगा क्योंकि दोनों पद्धतियों के लक्ष्य बहुत भिन्न होते हैं। चूंकि बहुत सारे बच्चे राज्य स्तरीय मानकीकृत परीक्षाओं में भी बैठने लगे हैं इसलिए हम ये उम्मीद करते हैं कि रचनावादी शिक्षा निश्चय ही उनके लिए उपयोगी साबित होगी। मगर बॉल एवं बास (2000) ने गणितीय तर्कणा एवं पुष्टि की जिस गहरी समझदारी का उल्लेख किया है उसकी इन राज्य स्तरीय अथवा राष्ट्रीय स्तर की मानकीकृत परीक्षाओं में जांच नहीं होती है। इन शोधकर्ताओं तथा दूसरे लोगों ने बच्चों के अधिगम के अध्ययन के लिए जो तरीका अपनाया है वह रचनावादी शिक्षा के उद्देश्य और बच्चे जो सीख रहे हैं, उसको पारदर्शी बना देती है।

प्रभावी रचनावादी अध्यापन

रचनावादी अध्यापन के मामले में दूसरी समस्या यह आती है कि चूंकि यह अधिगम का सिद्धांत है न कि अध्यापन का इसलिए हमें प्रभावी रचनावादी अध्यापन के तत्वों के बारे में पता ही नहीं है। उदाहरण के लिए, बॉल एवं बास (2000) ने जिन तीन शिक्षाशास्त्रीय “प्रतिबद्धताओं” का जिक्र किया है, वे व्यवहार के धरातल की नहीं हैं। जब ये

प्रतिबद्धताएं व्यवहार में रूपांतरित होती हैं तो क्या हम और ज्यादा या कम प्रभावी व्यवहारों के बारे में कुछ कह सकते हैं? क्या हम एकल अध्यापक, निश्चित संदर्भ और विद्यार्थियों के निश्चित समूह से आगे जाकर ऐसे व्यवहारों का संकेत दे सकते हैं जो दूसरों के लिए भी लाभकारी हों? अध्यापन में गुणवत्ता के स्वरूप के एक विश्लेषण में फेंस्टरमाशेर तथा मैने विभिन्न शिक्षाशास्त्रीय रूपरेखाओं के भीतर सफल एवं श्रेष्ठ अध्यापन के बोध को समझने का प्रयास किया था (फेंस्टरमाशेर एवं रिचर्ड्सन, 2000)। हमने अध्ययन में पाया कि रचनावादी रूपरेखा के भीतर रचनावादी अध्यापन ही अच्छा अध्यापन है। यानी, जो शोध साहित्य में दिया गया है वह मिसालिया रचनावादी अध्यापन के उदाहरण होते हैं जिनकी अकसर संचरण अध्यापन के साथ तुलना की जाती है। निष्प्रभावी रचनावादी अध्यापन के उदाहरण विरले ही पेश किये जाते हैं। अगर कोई अध्यापक खुद को रचनावादी मानता है (या जो यह मानता है कि वह बच्चों को समझाने के उद्देश्य से पढ़ा रहा है), मगर जो बहुत कुशल नहीं है तो आमतौर पर इसका कारण ये मान लिया जाता है कि उस अध्यापक की सोच में संचरण अध्यापन शैली के विश्वास बचे हुए हैं (कोहेन, 1990)।

प्रभावी रचनावादी अध्यापन की समझ का यह अभाव आंशिक रूप से रचनावादी अध्यापन सिद्धांत का अभाव है। रचनावादी अध्यापन के सुझाव कुछ समय तक 'फोनिक्स पढ़ाएं', 'बेसल रीडर्स न पढ़ाएं', 'नसीहते न दें', 'अपनी तरफ से कुछ न बताएं', आदि पाठदियों के रूप में ज्यादा दिखायी देते थे। 'कांस्ट्रक्टिविट' अध्यापन सिद्धांत में एक रचनावादी अधिगम सिद्धांत की आधारशिला और इस बारे में कुछ सुझाव हुआ करते थे कि हमें संचरण मॉडल से कौनसी चीजें नहीं लेनी हैं। यानी हमारे पास रचनावादी अध्यापन का स्पष्ट बोध नहीं था और लिहाजा हम रचनावाद के नाम पर कक्षा के भीतर होने वाली कुछ हैरतअंगेज चीजें ढूंढ लेते थे। मसलन, आप समग्र भाषा आंदोलन के ब्यौरों को याद करें। समग्र भाषा अध्यापन इस बात पर आश्रित होता है कि अध्यापक भाषा विकास सिद्धांत के लिए समग्र भाषा पद्धति के प्रति प्रतिबद्धता रखता हो, उसके पास यह तय करने का कौशल हो कि बच्चे अपने विकास की किस अवस्था में पहुंचे हैं (बोलने के दौरान अनायास होने वाली छोटी गलतियों का विश्लेषण) और कक्षा में एक ऐसा माहौल विकसित कर सके जहां बच्चे और वास्तविक भाषा नाना प्रकार से एक दूसरे से जुड़ रहे हों (के. गुडमैन, 1996; वाई. गुडमैन, 1996)। इनमें से पहली और तीसरी शर्त पढ़ाने के तरीकों के लिए आंशिक मार्गदर्शन देती है मगर कुल मिलाकर अध्यापन प्रक्रिया पर अधिगम सिद्धांत का ही वर्चस्व रहता था। भाषा अध्यापन का कौशल सीख रहे अध्यापकों को जो भाषा अध्यापन सिखाया जा रहा है उसके सिद्धांत के बिना वे इस अवधारणा को तो पसंद कर लेते हैं मगर इस पद्धति से कैसे पढ़ाना है, इसके बारे में ज्यादा नहीं जानते। इस अध्यापन में अराजकतावादी गैर-अध्यापन से लेकर बेसल रीडर्स की जगह वास्तविक साहित्य के सहारे समरूप पठन समूहों तक तमाम तरह की पद्धतियां अपनाई जाती हैं। ऐसी स्थिति से नीतिगत धरातल पर काफी चिंताएं पैदा हुई हैं, खासतौर से अराजकतावादी पद्धति की वजह से। इसी कारण कई जगह से ऐसी भाषा शिक्षा के स्थान पर पुरानी पद्धतियों को अपनाने की कोशिशें भी की गई हैं।

रचनावादी अध्यापन सिद्धांत के अभाव से शिक्षक शिक्षा के परिणामों पर पड़ने वाले प्रभावों के कुछ उदाहरण दूसरे विषय क्षेत्रों में भी दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए, मैक्किनॉन एवं स्कार्फ-सीएटर (1997) ने एलीमेंटरी विज्ञान पद्धति की विद्यार्थी का यह उद्धरण दिया है:

मैं अपनी कक्षा में लौटकर विज्ञान पढ़ाने के लिए बहुत उत्सुक हूं। रचनावाद ने मुझे सिखाया है (कि) मुझे पढ़ाने के लिए कोई विज्ञान जानने की जरूरत नहीं है। मैं बच्चों को अपने हिसाब से कुछ भी करने की छूट दूंगी क्योंकि मुझे मालूम है कि सही उत्तर जैसी कोई चीज नहीं हुआ करती। (पृष्ठ 53)

होल्ट-रीनॉल्ड्स (2000) ने भी एक ऐसी स्थिति का जिक्र किया है जहां एक भावी अंग्रेजी अध्यापक रचनावादी शिक्षाशास्त्र को अपने आप में एक लक्ष्य की तरह देखता है और अध्यापन गतिविधियों की विषयवस्तु और उद्देश्य पर ज्यादा ध्यान नहीं देना चाहता।

हाल ही में, अध्यापन सिद्धांत के विकास की एक सुचिंतित और व्यवहार आधारित पद्धति भी सामने आयी है जिसमें स्फार्ड (1998) के शब्दों में, ग्रहणशीलता और सहभागिता के रूपकों का समावेश किया गया है। ये दोनों रूपक सीखने

के दो परस्पर स्वतंत्र सिद्धांतों का उदाहरण हो सकते हैं और इसके बाद उन्हें अलग-अलग ढंग से अध्यापन में रूपांतरित कर दिया जाता है: यानी कोई भी शिक्षाशास्त्रीय पद्धति या तो ग्रहणशीलता पर आधारित होती है या सहभागिता पर। मगर, स्फार्ड का कहना है कि उन्हें अध्यापन के सिद्धांत के भीतर परस्पर साथ रखा जा सकता है।

परन्तु आज अध्यापन के सिद्धांत विषयवस्तु के क्षेत्र में विकसित किए जा रहे हैं (जैसे, लेम्पर्ट, 2001)।⁶ 1992 में शुलमान ने अध्यापन एवं अधिगम के मध्यम स्तरीय सिद्धांत की मांग की थी। इस पर शुलमान एवं किनलान (1996) में और प्रकाश डाला गया है। उनकी पद्धति में अलग-अलग विषयवस्तुओं के क्षेत्र में सिद्धांत निर्माण का आह्वान किया गया था। ऐसे सिद्धांतों के निर्माण से अध्यापकों और शिक्षक प्रशिक्षकों को रचनावादी अध्यापन की कमोबेश प्रभावी पद्धतियों का अंदाजा हो जाएगा। जैसा कि अगले हिस्से में जिक्र किया गया है, विषयवस्तु के क्षेत्र में शोध एवं सिद्धांत निर्माण पर फोकस से अध्यापकों के विषय ज्ञान के बारे में कुछ बिलकुल गैर-यथार्थवादी अपेक्षाएं पैदा हुई हैं।

अध्यापकों का विषयवस्तु ज्ञान

वाईनबर्ग एवं विल्सन (1991) का कहना है कि कक्षा में किसी विषय क्षेत्र का निरूपण इससे प्रभावित होता है कि उस अध्यापक के पास संबंधित विषय की और इस बात की समझदारी कैसी है कि बच्चे उस विषय को कैसे सीख रहे हैं। बीते कुछ सालों के शोधों में पहली से बारहवीं कक्षा तक और शिक्षक शिक्षा या पेशेवर विकास तक तमाम तरह की रचनावादी कक्षाओं में विषयवस्तु के ज्ञान के महत्व पर जोर दिया गया है। रचनावादी शिक्षा के लिए जरूरी है कि अध्यापक के पास उस अनुशासन की संरचना का भी ज्ञान हो और वह उसकी ज्ञानशास्त्रीय रूपरेखा भी समझता हो। ऐसे ज्ञान से अध्यापकों को इस बात की व्याख्या करने में मदद मिलती है कि बच्चे चीजों को कैसे समझ रहे हैं, अवधारणाओं, परिकल्पनाओं व मान्यताओं का अन्वेषण करने में मदद देने के लिए किस तरह की गतिविधियां तैयार की जानी चाहिए, एक साझा समझदारी विकसित करने के लिए चर्चा को किस तरह दिशा दी जाए, अतिरिक्त औपचारिक ज्ञान के स्रोतों के बारे में मार्गदर्शन देने और गलतफहमियों को दूर करने में मदद मिलती है।

बच्चों को यह अनुभव प्रदान करने के लिए आवश्यक विषय ज्ञान की गहराई माध्यमिक स्तर के ऐसे अध्यापकों में पाई जा सकती है जो किसी खास विषय के विशेषज्ञ हैं, जो वही विषय पढ़ा रहे हैं और कमोबेश अपने आप को उस सामग्री का अध्यापक मानते हैं मगर, हमें ये भी पूछना चाहिए कि प्रारंभिक स्कूल के स्तर पर विषय ज्ञान से संबंधित अपेक्षाएं अध्यापकों के लिए क्या भूमिका निभाती हैं (देखें, सोसनियाक, 1999)। चूंकि रचनावादी शोध अलग-अलग विषयों- गणित, विज्ञान, इतिहास या भाषा कला - में अलग-अलग किया जा रहा है इसलिए इस बात का नगण्य या शून्य एहसास दिखाई देता है कि बच्चों को दूसरे विषय भी पढ़ाए जाते हैं। हमें यह अच्छी तरह मालूम है कि रचनावादी अध्यापन के लिए उस अनुशासन की गहरी समझदारी तो जरूरी है ही, इस बात की समझदारी भी जरूरी है कि बच्चे उस विषय को कैसे सीखते हैं, और अध्यापक के पास उस अनुशासन के लिए उपयुक्त अध्यापन पद्धतियां भी होनी चाहिए। मगर, यह एक तर्कसंगत अपेक्षा है और अगर ऐसा है तो यह कैसे सुनिश्चित किया जाएगा कि एलिमेंटरी अध्यापकों के पास उन सारे विषयों का अपेक्षित ज्ञान हो जो उन्हें पढ़ाने हैं?

इस समस्या को संबोधित करने का एक तरीका यह है कि हम इस बात पर विचार करें कि ऐसे संदर्भ में समझ, मस्तिष्क की आदतों और कौशलों के हस्तांतरण का मतलब क्या होगा। फिलहाल अलग-अलग विषयों और संदर्भों में इस हस्तांतरण पर किया गया शोध निराशाजनक ही दिखाई देता है (डैटरमान एवं स्टर्नबर्ग, 1993; मेयर एवं विटरॉक 1996)। मगर, हाल में इस अवधारणा को नए सिरे से सूत्रबद्ध करने के आह्वान शायद उपयोगी साबित हो सकते हैं (बीच, 1999; ब्रेन्सफर्ड एवं श्वाट्ज़, 1999; ग्रीनो, 1997)। ये सवाल अपनी जगह रह जाता है कि हमें किसी विषय के अधिगम के सारे आयामों को अलग-अलग विषयों या अनुशासनों के दायरे में ही देखना चाहिए या नहीं? या, क्या ऐसे कौशल, सोचने के तरीके या दिमाग की आदतें भी हो सकती हैं जिनको सारे विषयों में बच्चों को हस्तांतरित किया जा सके या सिखाया जा सके, और जो अलग-अलग विषयवस्तुओं को सीखने के लिए रुचि बढ़ाने वाली और महत्वपूर्ण

हों? यदि हां तो हमें प्रारंभिक अध्यापकों की विषयवस्तु की समझ को लेकर ज्यादा यथार्थपरक अपेक्षाएं तय करनी होंगी। खासतौर से हमें यह देखना होगा कि उनकी समझदारी ऐसे ढंग से व्यवस्थित हो कि वह अलग-अलग विषयों में प्रासंगिक हो सके और अध्यापक व विद्यार्थी लगातार उनको विकसित करते जाएं।

हस्तांतरण के बारे में एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण सालोमन और पर्किन्स (1987) ने सुझाया है जिन्होंने इस शीर्षक पर विचार करते हुए सामान्य और संदर्भ से संबंधित नियमों का भेद बताया है। उनका कहना है कि अलग-अलग संदर्भों में भी कुछ सामान्य कौशल होते हैं। एक ज्यादा सामाजिक-सांस्कृतिक चौखटे में डायसन (1999) बताते हैं कि अध्यापक “वृहत्तर सामाजिक, एवं वैचारिक जगत में बच्चों को अपने ज्ञान को पुनः अवधारणाबद्ध करने में मदद देते हैं” (पृष्ठ 167)। अध्यापन की गतिविधियों पर बात करते हुए लायनहार्ट (2001) ने एक ऐसे अध्यापन कौशल का उदाहरण दिया है जो तमाम विषयों में उपयोगी हो सकता है। गणित एवं इतिहास के अध्यापन में व्याख्या के कौशल और भूमिका की पड़ताल करते हुए लायनहार्ट ने एक शैक्षिक व्याख्या के लिए मूल लक्ष्य तय किया है और फिर विषय केंद्रित शिक्षा संबंधी शोध का सहारा लेते हुए उन्होंने इन दोनों विषयों में संदर्भगत विशेषताओं का अध्ययन किया है। उनका अध्ययन संकेत देता है कि दोनों विषयों में बढ़िया स्पष्टीकरण और व्याख्या के लिए विषयवस्तु का गहरा ज्ञान होना चाहिए। इससे परिघटना की एक सामान्य तस्वीर भी मिलती है।

पीछले दोनों हिस्सों में अन्वेषण और विश्लेषण के ऐसे क्षेत्रों का उल्लेख किया गया है जो रचनावादी शिक्षाशास्त्र में हमारी समझ और व्यवहार को बेहतर बनाने में मदद दे सकते हैं। अगले भाग में रचनावादी अधिगम सिद्धांत पर आधारित रचनावादी शिक्षाशास्त्रीय सिद्धांत के बारे में मौजूदा चिंतन की आधारशिला पर प्रश्न उठाया गया है।

सांस्कृतिक भिन्नताएं

यह भाग सिर्फ एक एहतियात के उद्देश्य से लिखा गया है और रचनावादी शिक्षाशास्त्र की इस चर्चा को एक सामाजिक रचनावादी सांचे में पेश करता है - जिसे जर्गन (1994) ने प्रस्थापन की विद्वत्ता कहा है। इसमें रचनावाद को ऐसी अवधारणा के रूप में देखा जाता है जो हमारे वर्तमान सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक बंधनों और विचारधाराओं के तहत लागू की जा रही है। इस भाग में अल्पसंख्यक विद्यार्थियों के बीच रचनावादी शिक्षाशास्त्र के इस्तेमाल के बारे में चिंताएं व्यक्त करने वाले सीमित मगर बहुत शक्तिशाली शोधों की भी झलक मिलती है और प्रश्न उठाया गया है कि क्या ऐसे विद्यार्थियों पर एक प्रतिकूल शिक्षाशास्त्र का थोपा जाना सही है जो कि प्रभुत्वशाली संस्कृति का हिस्सा नहीं हैं (आइज़ेनहार्ट, फिंकल एवं मेरियोन, 1996; डेल्लिट, 1986, 1988; ली, 1999)। साथ ही इस हिस्से में मेरे कुछ प्रस्थापन भी दर्ज हैं। मैंने हाल ही में डेट्रॉयट के स्कूलों में अच्छा-खासा समय बिताया। वहां की कक्षाओं में मुझे मनोवैज्ञानिक श्रेणी में कोई खास रचनावादी शिक्षा पद्धति दिखाई नहीं दी। साथ ही मैंने ऐन आरबर, मिशिगन के स्कूलों में भी काफी समय दिया जहां मुझे रचनावादी शिक्षाशास्त्र पर काफी जोर दिखाई दिया। इस फर्क के बहुत सारे कारण हो सकते हैं। हो सकता है कि दोनों जगहों के अध्यापक बहुत अलग-अलग किस्म की शैक्षिक पृष्ठभूमि से आए हों। हो सकता है दोनों जगह की स्कूल बोर्ड की कक्षाएं एक-दूसरे से भिन्न हों। हो सकता है कि दोनों शहरों के बोर्ड की अपेक्षाएं अलग हों। ये भी हो सकता है कि शहरी इलाके में बोर्ड की अपेक्षाएं आधारभूत कौशलों के माध्यम से कम उपलब्धि की स्थिति से निपटने पर केंद्रित हों। यह फर्क अध्यापन और अधिगम के स्वरूप के बारे में सांस्कृतिक विश्वासों के फर्क से भी पैदा हो सकता है।

मुझे ऐसा लगता है कि फर्क इससे भी कहीं ज्यादा गहरा है: मनोवैज्ञानिक रचनावाद की जड़ें पश्चिमी, उदार और व्यक्तिवादी (यूरोसेंट्रिक) रही हैं और रचनावादी शिक्षाशास्त्र की मुख्यधारा, कम से कम अमेरिका में, संपन्न वर्गों में विकसित हुई थी। मुझे यह बात स्पष्ट नहीं है कि शिक्षण की मौजूदा रचनावादी शिक्षाशास्त्रीय पद्धतियों में सुझाई गई बहुत दृढ़ व्यक्तिवादी पद्धति तुलनात्मक रूप से गरीब और अल्पसंख्यक संस्कृतियों के लिए भी उपयुक्त होगी या नहीं क्योंकि वहां समुदाय के संरक्षण और विकास को अपेक्षाकृत गहरा महत्व दिया जाता है।

आइए मैं जरा इस बात को और स्पष्ट कर दूँ। मुझे पिछले तीन साल के दौरान दो बिलकुल अलग-अलग तरह के स्कूलों में समय बिताने का अवसर मिला (चो-होए, 2001; फेंस्टरमार्शर एवं रिचर्ड्सन, 2001; प्रकाशनाधीन)। इनमें से एक शहरी एफ्रोसेंट्रिक स्कूल ऑफ च्वाइस स्कूल था और दूसरा एक विश्वविद्यालय नगर में स्थित विविधतापूर्ण एलीमेंटरी स्कूल था। दोनों स्कूलों में अध्यापन की जो पद्धतियाँ अपनाई गईं वे बिलकुल अलग-अलग थीं। एफ्रोसेंट्रिक स्कूल में अध्यापक-केंद्रित शिक्षा का बोलबाला था⁸ और स्कूल के कायदे-कानून स्कूल के भीतर और बाहर दोनों जगह समुदाय के विकास और सुधार पर केंद्रित थे। यहां बच्चे उस समुदाय को रचने और सुधारने में सहायक भूमिका निभा रहे थे। अफ्रीका-केंद्रित दर्शन में मात और नगूजू साबा नामक सामुदायिक लक्ष्य सारे अध्यापकों, विद्यार्थियों और माता-पिता को मालूम थे। लिहाजा, स्कूल के भीतर और बाहर, दोनों जगह समुदाय के हित में योगदान देने का मतलब था कि एक सामुदायिक विश्व दृष्टिकोण से संबंधित मूल्य और अपेक्षाएं सबको मालूम थीं और यह अपेक्षा की जा रही थी कि बच्चे उनका पालन करेंगे और अध्यापक बच्चों में उन मूल्यों को सींचने पर जोर देंगे। बच्चों के साथ अध्यापकों के संबंध कमोबेश सार्वजनिक किस्म के थे। साक्षात्कारों के दौरान अध्यापकों ने बताया कि जब अध्यापक किसी एक बच्चे से बात करते हैं तो दूसरे बच्चे भी उस संवाद से सीखते रहते हैं। ईमानदारी, दूसरों के प्रति सम्मान और समुदाय के हित में सेवा का भाव जैसे आदर्शों का निरूपण करते अध्यापक इस आशय की स्पष्ट अपेक्षाएं रखते थे कि बच्चे अपने-अपने विषयों में भी सफलता प्राप्त करें ताकि वे हाईस्कूल और उससे आगे भी अच्छा प्रदर्शन कर सकें और बाद में लौट कर फिर से समुदाय को मदद दे सकें।

विश्वविद्यालय क्षेत्र में पढ़ने वाले स्कूल में पढ़ाई का ढंग बिलकुल अलग था। यहां अध्यापक अलग-अलग बच्चों के साथ अकसर निजी स्तर पर काम करते थे। ईमानदारी और रचनात्मकता जैसे जीवन कौशल लक्ष्य यहां भी बच्चों के लिए तय थे मगर अध्यापकों का मानना था कि सारे बच्चे इन लक्ष्यों को अलग-अलग, अपने अंदाज में ही संबोधित करेंगे। समुदाय का भाव यहां भी काफी दृढ़ था मगर यह अध्यापकों और बच्चों द्वारा प्रत्येक विद्यार्थी के लिए सहायता के उद्देश्य से रचा गया था। समुदाय में व्यक्ति के करने और न करने की चीजें तय थीं। उदाहरण के लिए, स्कूल के भीतर दूसरों के प्रति सम्मान का भाव रखना सर्वोपरि नैतिक लक्ष्य था। यहां समुदाय विद्यार्थियों को एक संवाद आधारित सामाजिक समूह रचने में मदद देने के लिए बनाया गया था ताकि बच्चों में चीजों की एक गहरी समझ हो और उनमें कक्षा के दूसरे बच्चों के साथ एक साझा समझ विकसित हो। मगर अध्यापकों का मानना था कि हर बच्चा विशिष्ट होता है और किसी भी विषय या शीर्षक पर एक विशिष्ट किस्म की समझदारी विकसित करता है। इन अध्यापकों में यह सोच नैतिक मूल्यों, झूठ बोलने और धौंसबाजी जैसे नैतिक रुझानों के मामले में भी दिखाई दी।

समुदाय के प्रति यह पद्धति मनोवैज्ञानिक रचनावाद की धारा का प्रतिनिधित्व करती है। मनोवैज्ञानिक रचनावादी पद्धति एक प्रभुत्वशाली संस्कृति में खासतौर से ज्यादा आसान है हालांकि प्रभुत्वशाली संस्कृति के रूढ़िवादी तत्वों के स्तर पर चिंताएं अभी भी बची रह जाती हैं। ऐसे में समुदाय एक-दूसरे से सीखने में मदद देने के उद्देश्य से अस्तित्व में आता है जबकि एफ्रो-सेंट्रिक स्कूल में बच्चों को इस तरह की शिक्षा दी जा रही थी जिससे वे समुदाय को बनाए रखने और सुधारने में मदद दे सकें।

दोनों स्कूलों की संस्कृति में ये भिन्नताएं, खासतौर से समुदाय के प्रति उनके दृष्टिकोण तथा समुदाय में व्यक्ति की भूमिका के बारे में उनकी सोच में यह फर्क दोनों स्कूलों में पढ़ाने के तरीकों में भी निश्चित रूप से प्रभाव डालेगा। दरअसल, दोनों ही स्कूलों में बच्चों के लिए सीखने के अवसर और माहौल काफी थे। फिर भी दोनों में ही भारी फर्क था और एक स्कूल में वैसी रचनावादी शिक्षा पद्धति का पालन नहीं किया जा रहा था जिसकी बहुत सारे राष्ट्रीय दस्तावेजों में वकालत की गई थी।

विभिन्न स्रोतों से पर्व के इस भाग पर मुझे बहुत सारी टिप्पणियां मिली थीं। दोनों स्कूलों की भिन्नताओं का विवरण, एफ्रोसेंट्रिक स्कूल में अपनाई गई शिक्षा पद्धति को रचनावादी शिक्षाशास्त्र न मानना और यह निष्कर्ष देना कि दोनों ही स्कूलों में बच्चों को सीखने के बेहतरीन अवसर दिए जा रहे थे, इनके बारे में कई चिंताएं व्यक्त की गईं। बहुत सारे टिप्पणीकारों ने यह भी कहा कि मेरे अपने सांस्कृतिक और मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण की वजह से ही मुझे ऐसा लगता

है कि एफ्रो-सेंट्रिक स्कूल में रचनावादी शिक्षा पद्धति नहीं अपनाई जा रही थी। यह तो निश्चित रूप से हो सकता है मगर मामला सिर्फ यहीं तक सीमित नहीं है। जिस समुदाय ने रचनावादी शिक्षाशास्त्र की निर्मिति को विकसित और परिभाषित किया है वह भी मेरे सांस्कृतिक, मानवशास्त्रीय एवं वर्गीय दृष्टिकोण से लैस लोगों का ही समुदाय है। कुल मिला कर बात यह है कि यदि पीछे उल्लिखित पांचों तत्वों का कक्षा में पालन नहीं किया जा रहा है तो उसे रचनावादी शिक्षाशास्त्र नहीं कहा जा सकता चाहे हम रचनावादी अधिगम सिद्धांत को सभी विद्यार्थियों के लिए जायज और उपयोगी मानते हों या न मानते हों।

कुछ लोगों ने यह भी सुझाव दिया कि एफ्रोसेंट्रिक स्कूल में जो पद्धति अपनाई गई थी वह भी रचनावादी शिक्षाशास्त्र का ही एक अलग रूप हो सकती है। मगर मैंने जिस शोध टीम के साथ काम किया उसने व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से अध्यापकों के साथ भी अपने अवलोकनों पर चर्चा की थी। एफ्रोसेंट्रिक स्कूल के अध्यापक इस बारे में स्पष्ट थे कि उनकी पद्धति अध्यापक-केंद्रित है। वे बच्चों को दुनिया की एक खास समझ देने की कोशिश कर रहे थे। उनके पास बच्चों के लिए स्पष्ट लक्ष्य थे जिनमें अकादमिक, सामुदायिक और जीवन संबंधी अलग-अलग लक्ष्य शामिल थे। इस पूरी तस्वीर को केवल तभी रचनावादी शिक्षाशास्त्र कहा जा सकता है जब शिक्षाशास्त्रीय तत्वों की परिभाषा और रूपरेखा में नाटकीय बदलाव किए जाएं।

रचनावादी शिक्षाशास्त्र के बारे में सबसे गंभीर समस्या तब पैदा होती है जब इसे सबके लिए सर्वश्रेष्ठ व्यवहार के रूप में देखा जाने लगता है। ऊपर उद्धृत दोनों स्कूलों में दिखाई दे रही भिन्नताओं की चर्चा से पता चलता है कि रचनावादी शिक्षाशास्त्र के प्रति हमारा उत्साह और इस तरह की शिक्षा के बारे में राष्ट्रीय और प्रांतीय मानकों, शिक्षक शिक्षा कक्षाओं, पेशेवर विकास और सुधार के आह्वानों में जिस तरह की हिमायत दिखाई देती है, उसके जरिए कहीं हम ऐसे लोगों पर शिक्षाशास्त्र का एक प्रभुत्वशाली मॉडल न थोप दें जो अलग ढंग से काम करना चाहते हैं और जिनके पास संभवतः अलग ढंग से काम करने के ठोस कारण भी मौजूद हैं।

निष्कर्ष

हम रचनावादी अधिगम सिद्धांत के आधार पर रचनावादी शिक्षाशास्त्र की एक समझ विकसित करने की दिशा में काफी आगे आ चुके हैं। मगर, अभी भी रचनावादी शिक्षाशास्त्र के बारे में बहुत सारे पहलू छूटे हुए हैं जिन पर हमें बहुत सघन और ठोस शोध करने की जरूरत है।

आज के दौर में रचनावादी शिक्षाशास्त्र के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण शोध इस बारे में होना चाहिए कि अध्यापक की क्रियाओं को बच्चों के अधिगम के साथ कैसे जोड़ा जाए। मैं यह सुझाव नहीं दे रही हूँ कि हमें मानक परीक्षाओं में अध्यापकों के व्यवहार और बच्चों के परिणामों के संबंध को तय करने के लिए पुरानी व्यवहारवादी प्रक्रिया पर लौट जाना चाहिए। यहां अध्यापक की “क्रियाओं” में उसके इरादे और व्यवहार, दोनों पहलू शामिल हैं। लिहाजा, इस संबंध के अध्ययन में बच्चों के लिए व्यापक और सीमित अधिगम लक्ष्यों के बारे में अध्यापक के विश्वास और मूल्य, दोनों का जायजा लिया जाना चाहिए और साथ ही यह भी देखा जाना चाहिए कि वे कक्षा में उसकी गतिविधियों में किस तरह संबद्ध हैं। रचनावादी शिक्षाशास्त्र में दूसरा पहलू है सिद्धांत के विकास का। रचनावादी अध्यापन के सिद्धांत हमें ये समझने में मदद देंगे कि शिक्षक शिक्षा एवं पेशेवर विकास की प्रक्रिया में एक प्रभावी अध्यापन पद्धति क्या हो सकती है। जैसा कि पीछे जिक्र किया गया था, शुलमान एवं किनलान बताते हैं कि मध्यम स्तरीय सिद्धांत विषयों के दायरे में विकसित किये जाने चाहिए। मगर, इसके बाद सवाल यहां आकर टिक जाता है कि क्या विषय अध्यापन के सिद्धांतों से एक सामान्य सिद्धांत की ओर बढ़ना संभव है या नहीं ताकि हम एक ऐसा सिद्धांत अपना सकें जिसमें विषयवस्तु का महत्व तो हो मगर वह उस पर हावी न हो जाए। हो सकता है कि दोनों स्तरों पर सिद्धांत निर्माण की आवश्यकता हो - विषय के स्तर पर भी और सामान्य स्तर पर भी। इस तरह के सिद्धांत निर्माण से एक विविध दर्शन और संश्लेषण की संभावना पैदा होती है जो अधिगम के एकल “विशुद्ध” सिद्धांतों से दूर जाकर ऐसे अधिगम अनुभव मुहैया कराए जो रचनावाद और समझ के लिए पढ़ाने के तहत अपेक्षित हैं।

इस सिद्धांत निर्माण से हमें अध्यापकों, खासतौर से प्रारंभिक कक्षाओं के अध्यापकों के लिए संबंधित विषय के गहरे और विस्तृत ज्ञान की जरूरत को रेखांकित करने में मदद मिल सकती है। अलग-अलग विषयों की बजाय एक ज्यादा सामान्य स्तर पर अध्यापन को देखें तो ऐसे अध्यापकों के लिए एक उपयोगी रूपरेखा भी हासिल हो सकती है जिनके पास किसी एक विषय की समझ दूसरे विषय से कम है। इस तरह की रूपरेखा अध्यापकों के लिए विषय ज्ञान विकसित करने की अपनी सतत चेष्टाओं के लिए भी उपयोगी हो सकती है।

और अंत में, रचनावादी शिक्षाशास्त्र की सांस्कृतिक समालोचना हमें रचनावादी शिक्षाशास्त्र से भी आगे ले जा सकती है। एप्रोसेंट्रिक स्कूल के अध्यापक इस बारे में स्पष्ट थे कि उनके बच्चों के लिए क्या लक्ष्य होंगे और लिहाजा वे ऐसी शिक्षाशास्त्रीय तकनीक, रणनीति और पद्धतियां अपना रहे थे जिनमें ये अपेक्षाएं बच्चों को संप्रेषित होती थीं और उन्हें लक्ष्य हासिल करने में मदद मिलती थी। एप्रोसेंट्रिक स्कूल में अध्यापक अपने बच्चों के मामले में जो एक लक्ष्य अच्छी तरह हासिल करने में सफल रहे वही लक्ष्य रचनावादी स्कूल के अध्यापकों ने भी अपने बच्चों के लिए तय किया था : बच्चों को अधिगम की जिम्मेदारी सौंपना। अध्यापक इसे एक ऐसा गुण मानते थे जो बच्चों को न केवल स्कूल की पढ़ाई में बल्कि पूरे जीवन आगे बढ़ने में मदद देगा। बिलकुल अलग-अलग सांस्कृतिक संदर्भों में बच्चों के लिए निर्धारित लक्ष्यों - बौद्धिक और नैतिक, दोनों प्रकार के लक्ष्य - की तुलना करने और अध्यापकों द्वारा इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अपनाए गए तरीकों की जांच करने से हमें अध्यापन कार्य का एक ऐसा सिद्धांत विकसित करने के लिए दृष्टिकोण और समझ हासिल हो सकती है जिसमें रचनावादी अधिगम सिद्धांतों का भी समावेश हो मगर जो बिलकुल अलग-अलग सांस्कृतिक परिवेशों के लिए भी उपयुक्त हों।

इस समालोचना से पता चलता है कि हमें रचनावादी शिक्षाशास्त्र की अपनी समझ के बारे में आंशिक रूप से संदेहवादी रवैया अपनाना चाहिए और इसे सर्वश्रेष्ठ पद्धति मान लेने या शैक्षिक व्यवहार के लिए एक मानक में रूपांतरित कर देने की जिद नहीं करनी चाहिए। अगर हम रचनावादी अधिगम सिद्धांत को यह समझाने का एक तरीका मानते हैं कि बच्चे कैसे सीखते हैं तो हमें यह भी मानना होगा कि बच्चे बहुत प्रकार की शिक्षा से सीखते हैं। ऊपर उल्लिखित पांचों तत्वों में सीमित रचनावादी शिक्षाशास्त्रीय पद्धति बच्चों के सीखने में मदद देने का सिर्फ एक तरीका है। अध्यापन के सिद्धांत में ये भी हो सकता है कि अधिगम के रचनावादी सिद्धांत का समावेश भी किया जाए और वह सिद्धांत शोधों में वर्णित रचनावादी शिक्षाशास्त्रीय पद्धति से बहुत भिन्न दिखाई दे। आज हमें अपने रचनावादी शिक्षाशास्त्र की समझ पर एक बार फिर विचार करना चाहिए और बच्चों के अधिगम तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्यों पर ज्यादा ध्यान देने वाले ताजा आनुभविक शोध की मदद से एक ऐसा अध्यापन सिद्धांत विकसित करना चाहिए जिसमें लक्ष्यों को हासिल करने के लिए विविध रणनीतियों की गुंजाइश हो और जिसमें प्रभावी अध्यापन का एक ऐसा बोध हो जो रचनावादी शिक्षाशास्त्र की हमारी मौजूदा समझ से ऊपर और परे तक जा सके। ♦

लेखिका परिचय: यूनिवर्सिटी ऑफ मिशीगन में टीचिंग एंड टीचर एज्यूकेशन की प्रोफेसर व स्कूल ऑफ एज्यूकेशन में एज्यूकेशनल स्टडीज की अध्यक्ष रही हैं। उन्हें अमेरिकन एसोसिएशन ऑफ कॉलेज फॉर टीचर एज्यूकेशन से लाइफ टाइम एचीवमेंट अवार्ड मिल चुका है। 'हैंडबुक ऑफ रिसर्च ऑन टीचिंग' तथा 'कंस्ट्रक्टविस्ट टीचर एज्यूकेशन: बिल्डिंग अ न्यू वर्ल्ड ऑफ अंडरस्टैंडिंग' जैसी कई किताबों की लेखिका हैं।

संपर्क: richardv@umich.edu

नोट्स

1. जॉन ड्यूवी ने जिसे शिक्षा पद्धति में रूपांतरित किया, वह रचनावाद इसका एक अपवाद है हालांकि ड्यूवी इसे रचनावाद नहीं कहते थे। मगर, जैसा कि होवे और बर्व (2000) ने कहा है, दार्शनिक खुद को रचनावादी नहीं कहते और विरले ही इस शब्द का प्रयोग करते हैं।
2. उदाहरण के लिए ब्रॉफी (2002) में दिए गए अध्यायों को देखें। सोशल रचनावादी अध्यापन की यह अवधारणा रचनावाद की मनोवैज्ञानिक व्याख्या पर आधारित है और इसमें कक्षा के सामाजिक संदर्भ और संवाद पर जोर दिया गया है।

3. उदाहरण के लिए, जोखिमग्रस्तता की सामाजिक अवधारणा पर मेरे तथा मेरे सहयोगियों द्वारा किया गया काम इसका एक अपवाद है (रिचर्डसन, कैसेनोवा, प्लेसियर एवं गिलफॉयले 1989)। इस निर्मिति को एक सामाजिक निर्मिति के रूप में देखते हुए हम यह देखने का प्रयास कर रहे थे कि कक्षा में यह कैसे साकार होती है: अध्यापक इसके बारे में क्या सोचते हैं, कैसे जोखिमग्रस्त बच्चों की शिनाखा करते हैं और उनके बारे में क्या करते हैं। यह एक समाजशास्त्रीय अध्ययन नहीं था। यह सामाजिक-मनोवैज्ञानिक रूपरेखा में किया गया शोध था। यह शोध जोखिमग्रस्तता को एक ऐसी निर्मिति के रूप में देखता है जो स्पेशल एजुकेशन के लिए केंद्रीय फंडिंग की संरचना से लेकर सभी बच्चों तक पहुंचने की कठिनाई तक बहुत सारे अलग-अलग कारणों से भी निर्धारित की जाती है।
4. यह विवाद का विषय है। यानी, प्रत्यक्ष शिक्षा “बताने” जैसी लगती है और रचनावादी शिक्षाशास्त्र के शुरुआती विवरणों में सार्वजनिक रूप से चर्चा नहीं की जाती थी। हो सकता है कि कुछ अवधारणाओं में यह अभी भी निषिद्ध हो।
5. गौर करने की बात है कि रचनावादी शोधों में समझ पर ज्यादा और कौशलों पर विरले ही ध्यान दिया जाता है।
6. हालांकि यह कहना जरूरी है कि लेम्पर्ट की रोचक और पुरस्कृत किताब में ऐसी रूपरेखाओं और निर्मितियों का सहारा लिया गया है जो तमाम विषयों के दायरे में प्रभावी हैं।
7. हालांकि सैकेंडरी विद्यार्थियों की विषयवस्तु की गहराई पर भी प्रश्न उठाए जाते रहे हैं (मेकडायरमिड, 1990)।
8. अध्यापकों ने स्पष्ट रूप से बताया कि वे ही पाठ्यचर्या और सामाजिक व नैतिक लक्ष्यों को निर्धारित करते हैं (रिचर्डसन एवं रैटज़लाफ, 2001)। यह बात कक्षा अवलोकन में भी दिखाई दी हालांकि बच्चों ने कक्षा गतिविधियों में सक्रिय रूप से हिस्सा लिया और उन्हें अपने अधिगम की जिम्मेदारी भी दी गई।

संदर्भ:

- Atwell, N. (1987). *In the middle: Writing, reading and learning with adolescents*. Upper Montclair, NJ: Boynton/Cook.
- Ball, D., & Bass, H. (2000). Making believe: The collective construction of public mathematical knowledge in the elementary classroom. In D. Phillips (Ed.), *Constructivism in education* (pp. 193-224). Chicago: University of Chicago Press.
- Barr, R. (2001). Research on the teaching of reading. In V. Richardson (Ed.), *Handbook of research on teaching* (4th ed., pp. 390-415). Washington, DC: American Educational Research Association.
- Beach, K. (1999). Consequential transitions: A socio-cultural expedition beyond transfer in education. In Iran-Nejad & P. D. Pearson (Eds.), *Review of research in education* (pp. 101-140). Washington, DC: American Educational Research Association.
- Bransford, J. D., & Schwartz, D. L. (1999). Rethinking transfer: A simple proposal with multiple implications. In Iran-Nejad & P. D. Pearson (Eds.), *Review of research in education* (pp. 61-100). Washington, DC: American Educational Research Association.
- Brophy, J. (Ed.). (2002). *Social constructivist teaching: Affordances and constraints*. Oxford, UK: Elsevier Science, Ltd.
- Chow-Hoy, T. (2001). An inquiry into school context and the teaching of the virtues. *Journal of Curriculum Studies*, 33(6), 655-682.
- Cobb, P., Wood, T., Nicholls, J., Trigatti, B., & Perlwitz, M. (1991). Assessment of a problem centered second-grade mathematics project. *Journal for Research in Mathematics Education*, 22(1), 3-29.
- Cohen, D. (1990). A revolution in one classroom: The case of Mrs. Oublier. *Educational Evaluation and Policy Analysis*, 12(3), 311-344.
- Delpit, L. (1986). Skills and other dilemmas of a progressive Black educator. *Harvard Educational Review*, 56(4), 379-385.
- Delpit, L. (1988). The silenced dialogue: Power and pedagogy in educating other peoples' children. *Harvard Educational Review*, 56(4), 379-385.

- Detterman, D., & Sternberg, R. (Eds.). (1993). *Transfer on trial: Intelligence, cognition, and instruction*. Norwood, NJ: Ablex.
- Dyson, A. H. (1999). Transforming transfer: Unruly children, contrary texts, and the persistence of the pedagogical order. In A. Iran-Nejad & P. D. Pearson (Eds.), *Review of research in education* (pp. 141-172). Washington, DC: American Educational Research Association.
- Eisenhart, M., Finkel, E., & Marion, S. (1996). Creating the conditions for scientific literacy: A re-examination. *American Educational Research Journal*, 33, 261-295.
- Fenstermacher, G. D., & Richardson, V. (2000). *On making determinations of quality in teaching*. Washington, DC: Board of Institutional Comparative Studies, national Academy of Science.
- Fenstermacher, G. D., & Richardson, V. (in press). An inquiry into the moral dimensions of teaching. In L. Poulson & M. Wallace (Eds.), *Learning to read critically in teaching and learning*. Thousand Oaks, CA: Sage Publications.
- Fosnot, C. T. (1989). *Enquiring teachers, enquiring learners: A constructivist approach to teaching*. New York: Teachers College Press.
- Freedman, S. W. (1994). *Exchanging writing, exchanging cultures*. Cambridge, MA: Harvard University Press.
- Gergen, K. J. (1994). *Realities and relationships*. Cambridge, MA: Harvard University press.
- Goodman, K. (1996). *On reading*. Richmond Hill, CA: Scholastic Canada Ltd.
- Goodman, Y. (1996). *Notes from a kidwatcher: Selected writings of Yetta M. Goodman*. Portsmouth, NH: Heineman.
- Greeno, J. (1997). Response: On claims that answer the wrong questions. *Educational Researcher*, 26(1), 5-17.
- Holt-Reynolds, D. (2000). What does the teacher do? Constructivist pedagogies and prospective teachers' beliefs about the role of a teacher. *Teaching and Teacher Education*, 16(1), 21-32. 1638 Teachers College Record
- Howe, K., & Berv, J. (2000). Constructing constructivism, epistemological and pedagogical. In D. Phillips (Ed.), *Constructivism in education* (pp. 19-40). Chicago: University of Chicago Press.
- Lampert, M. (2001). *Teaching problems and problems of teaching*. New Haven, CT: Yale University Press.
- Lee, O. (1999). Science knowledge, worldviews, and information sources in social and cultural contexts: Making sense after a natural disaster. *American Educational Research Journal*, 36(2), 187-220.
- Leinhardt, G. (2001). Instructional explanations: A commonplace for teaching and location of contrast. In V. Richardson (Ed.), *Handbook of research on teaching* (4th ed., pp. 333-357). Washington, DC: American Educational Research Association.
- MacKinnon, A., & Scarff-Seatter. (1997). Constructivism: Contradictions and confusions in teacher education. In V. Richardson (Ed.), *Constructivist teacher education: Building new understandings* (pp. 38-56). London: Falmer.
- Matthews, M. R. (2000). Appraising constructivism in science and mathematics. In D. Phillips (Ed.), *Constructivism in education* (pp. 161-192). Chicago: University of Chicago Press.
- Mayer, R., & Wittrock, M. (1996). Problem-solving transfer. In D. Berliner & R. Calfee (Eds.), *Handbook of educational psychology* (pp. 47-62). New York: Macmillan.
- McDiarmid, G. W. (1990). The liberal arts: Will more result in better subject matter understanding? *Theory Into Practice*, 29(1), 21-29.
- National Council of Teachers of Mathematics. (1989). *Curriculum and evaluation standards for school mathematics*. Reston, VA: Author.
- National Council of Teachers of Mathematics. (1991). *Professional standards for teaching mathematics*. Reston, VA: Author.

- Peterman, F. P. (1991, March). An experienced teacher's changing beliefs about teaching and learning. In V. Richardson, & K. Tobin. (Chairs), *The emerging role of constructivism in changes in teachers' beliefs*. Symposium conducted at the meeting of American Educational Research Association, Chicago, IL.
- Peterman, F. P. (1992, April). Confronting my personal beliefs about constructivism and teacher education: An autobiographical narrative. In V. Richardson, & K. Tobin (Chairs), *Changing beliefs and learning to teach: Constructivist perspectives on teacher education*. Symposium conducted at the annual meeting of the American Educational Research Association, San Francisco, CA.
- Peterman, F. P., & Comeaux, M. (1993, April). *Constructivism and the classroom ecology*. In V. Richardson, K. Tobin & E. von Glasersfeld (Chairpersons), *Reconstructing constructivism: A conversation about constructivism, teacher education, and the classroom ecology*. Symposium conducted at the annual meeting of the American Educational Research Association, Atlanta, GA.
- Phillips, D. (Ed.), (2000). *Constructivism in education*. Chicago: University of Chicago Press.
- Resnick, L. B. (1989). Introduction. In L. B. Resnick (Ed.), *Knowing, learning, and instruction: Essays in honor of Robert Glaser* (pp. 1-24). Hillsdale, NJ: Erlbaum.
- Richardson, V. (Ed.), (1997). *Constructivist teacher education: Building a world of new understandings*. London: Falmer.
- Richardson, V., Casonova, U., Placier, P., & Guilfoyle, K. (1989). *School children at risk*. New York: Falmer.
- Richardson, V., & Ratzlaff, C. (2001). *Teachers' perceptions of the moral dimensions of their classrooms*. Seattle, WA: American Educational Research Association.
- Salomon, G., & Perkins, D. (1987). Rocky roads to transfer: Rethinking mechanisms of a neglected phenomenon. *Educational Researcher*, 24(2), 138-145.
- Sfard, A. (1998). On two metaphors for learning and the dangers of choosing just one. *Educational Researcher*, 27(2), 4-13. Constructivist Pedagogy 1639
- Shulman, J. (1992). *Case methods in teacher education*. New York: Teachers College Press.
- Shulman, L., & Quinlan, K. (1996). The comparative psychology of school subjects. In D. Berliner & R. Calfee (Eds.), *Handbook of educational psychology* (pp. 399-437). New York: Simon & Schuster.
- Sosniak, L. (1999). Professional and subject matter knowledge for teacher education. In G. Griffin (Ed.), *The education of teachers* (pp. 185-204). Chicago: University of Chicago Press.
- Thompson, P. (2000). Radical constructivism: Reflections and directions. In L. P. Steffe, & P. W. Thompson (Eds.), *Radical constructivism in action: Building on the pioneering work of Ernst von Glasersfeld* (pp. 412-448). London: Falmer Press.
- Tobin, K. (1993). *The practice of constructivism in science education*. Hillsdale, NJ: Lawrence Erlbaum.
- White, R. (2001). The revolution in research on science teaching. In V. Richardson (Ed.), *Handbook of research on teaching* (4th ed., pp. 457-471). Washington, DC: American Educational Research Association.
- Wilson, S. T. (2001). Research on history teaching. In V. Richardson (Ed.), *Handbook of research on teaching* (4th ed., pp. 527-544). Washington, DC: American Educational Research Association.
- Wilson, S., & Wineburg, S. (1993). Wrinkles in time and place: Using performance assessments to understand the knowledge of history teachers. *American Educational Research Journal*, 30, 729-769.
- Wineburg, S., & Wilson, S. (1991). Subject-matter knowledge in the teaching of history. In J. Brophy (Ed.), *Advances in research on teaching: Volume 2. Teachers' knowledge of subject matter as it relates to their teaching practice* (pp. 305-348). Greenwich, CT: JAI Press.
- Wood, T., Nelson, B. S., & Warfield, J. (Eds.). (2001). *Beyond classical pedagogy: Teaching elementary school mathematics*. Mahwah, NJ: Erlbaum.